दर्शन का जीवन में महत्व

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,

पूर्व कुलपति सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

दर्शन का सामान्य अर्थ है देखना। विशिष्ट रूप से यदि देखा जाये तो दर्शन का अर्थ है विश्वास, धर्म में विश्वास होना, मंत्रों एवं सूत्रों में विश्वास होना सम्यक् दर्शन का अर्थ है। सही दृष्टि दिशा का सही होना एवं हर विषय का अपना दर्शन होता है। दर्शन का जन्म कब होता है? दर्शन का जन्म होता है स्वानुभूति से। जीवन अस्तित्व के बारे में जानने की जिज्ञासा हो जाती है। दर्शन का सम्बन्ध जीवन से है। जीवन के अन्दर सत् भाव कैसे जाये? सत्य के रूप को उद्घाटित करना दर्शन है। भारतीय संस्कृति का उद्घोष सत्यमेव जयते है। सत्य ही दर्शन का सार है। दर्शन मनुष्य की सत्याभिमुखी प्रगति का क्रम है। इन्द्रियों की प्रवृत्ति बहिर्मुखी है। इसलिए पहले बाह्य जगत् को देखना है। बाह्य जगत् यानि स्थूल सत्य। इन्द्रियों के द्वारा उपलब्ध सत्य से वह सन्तुष्ट नहीं होता, तब बुद्धि के द्वारा स्थूल से सूक्षम सत्य की ओर प्रस्थान करता है। बुद्धि भी उसे पूर्णतः सन्तुष्ट नहीं कर पाती, तब वह अनुभूति के द्वारा सूक्ष्मतम या परिपूर्ण सत्य की ओर प्रस्थान करता है। दर्शन का यह क्रम सर्वत्र रहा है। इस क्रम के अनुसार मनुष्य ने जगत् आत्मा और परमात्मा को देखने का चिर प्रयत्न किया है। यही दर्शन के विकास का इतिहास है।

दर्शनीय तत्त्व यानि सत्य के रूप परस्पर –विरोधी नहीं हैं। देखने की दृष्टियां भिन्न–भिन्न हैं, इसलिए सत्य भी परस्पर–विरोधी जैसा प्रतिभासित होता है। दर्शन के दो रूप प्राप्त है, तार्किक या बौद्धिक एवं आनुभविक। जितना दार्शनिक भेद है वह सब बौद्धिक–तार्किक स्तर पर है। अनुभव के स्तर पर मतभेद नहीं हो सकता। अनुभव की तीन कक्षाएं हैं। प्रथम कक्षा में सत्य का संक्षेप में अनुभव व प्रतिपादन होता है। दूसरी कक्षा में सत्य का आंशिक विस्तार से अनुभव व प्रतिपादन होता है। तीसरी कक्षा में सत्य का समग्रता से अनुभव व प्रतिपादन होता है। जैन दार्शनिकों ने इन कक्षाओं की संज्ञा क्रमशः द्रव्यार्थिकनय, पर्यार्थिकनय और प्रत्यक्ष प्रमाण दी है। अनुभव की कक्षा का यथार्थ बोध होने पर सत्य के ग्रहण में कोई मतभेद नहीं होता। यह मतभेद–शून्य विद्या ही जैन दर्शन के अनुसार अध्यात्म विद्या है। इसी को भगवद् गीता में

सब विद्याओं में श्रेष्ठ कहा गया है– अध्यात्मविद्या विद्यानाम्। जैन दर्शन जिन तत्त्वों पर विकासशील हुआ है, वे आधारभूत तत्त्व चार हैं–आत्मवाद, लोकवाद, कर्मवाद और क्रियावाद।

दर्शन के अनुसार जड़ और चेतन स्वतंत्र पदार्थ हैं। शरीर पंचभूतात्मक है। चेतना पंचभूतात्मक नहीं है। चेतना का स्वतंत्र अस्तित्त्व है। चेतना के कारण ही पंचभूतात्मक शरीर चेतनवत् प्रतीत होता है। जैन दर्शन आत्मवादी दर्शन है। इस दर्शन में बहिरात्मा, अंतरात्मा और परमात्मा का अस्तित्त्व स्वीकृत है। बहिरात्मा आत्मा की पहली कक्षा है। इसमें देह और आत्मा का भेद ज्ञान नहीं होता । अंतरात्मा आत्मा की दूसरी कक्षा है। इसमें भेद ज्ञान प्राप्त हो जाता है। इसके उपलब्ध होने पर उसका प्रस्थान अपने देह मुक्त शरीर की ओर हो जाता है। परत्मात्मा आत्मा की सर्वोच्च कक्षा है। इसमें अपने मौलिक रूप में आत्मा अवस्थित हो जाता है।

ईश्वरवादी दर्शन ईश्वर को सृष्टिकर्त्ता मानते हैं। न्याय, वैशेषिक, योग आदि दर्शन ईश्वरवादी दर्शन हैं। इस दर्शन में ईश्वर ही सम्पूर्ण सृष्टि का कर्त्ता, धर्त्ता और हर्ता माना गया है। जैन दर्शन जगत को आदि अनन्त मानता है। इसलिए किसी ईश्वर की कल्पना जैन दर्शन में नहीं की गयी है। जैन दार्शनिकों ने सत्य को अनेकान्तिक दृष्टि से देखा। इसलिए अनन्तधर्मा तत्त्व के किसी एक धर्म की स्वीकृति को उन्होंने सम्पूर्ण सत्य की स्वीकृति नहीं माना। उनकी दृष्टि में एकांशग्राही दृष्टिकोण मिथ्या है। साधारण मनुष्य का ज्ञान अपर्याप्त होता है। इसलिए वह एकाशंग्राहिता के वलय से मुक्त नहीं हो सकता। सर्वांशग्राहिता के बिना सम्यक् दृष्टि नहीं हों सकती। जैन दर्शन में स्याद् शब्द सापेक्षवाचक है। किसी वस्तु के वर्णन क्रम में इसका प्रयोग होता है। एकांशग्राही दृष्टिकोण सापेक्ष होता है तब वह मिथ्या नहीं होता। उसमें एक धर्म की स्वीकृति अन्तर्भूत अनन्त धर्मों की स्वीकृति से विभिन्न होकर नहीं होती। यह प्रक्रिया अज्ञात अनन्त सत्य के निषेध की नहीं, किन्तु स्वीकृति की प्रक्रिया है। इसमें मनुष्य ज्ञात को ही अंतिम सत्य मानकर नहीं बैठता। वह ज्ञात के प्रति आसक्त हो अज्ञात की जिज्ञासा का द्वार बन्द नहीं करता।

जैनाचार्यों ने जैन दर्शन की व्याख्या इसी संदर्भ में की है। सप्तभंगी और सप्तनयों ने प्रत्येक दर्शन के साथ अपना नैकट्य स्थापित किया। साम्प्रदायिक आस्था का प्रस्थान दूसरों से विभिन्न होने की दिशा में होता है। दर्शन का सत्य तार्किक सत्य होता है। सत्य की

एकात्मकता आत्मौपम्य या आत्माद्वैत जितना शाश्वत सत्य है उतना ही सामयिक समस्याओं का समाधान है। सामयिक समस्याओं का समाधान करना भी दर्शन का एक अंग है। शाश्वत और सामायिक दोनों की समन्वित ही दर्शन है। दर्शन में इन दानों दृष्टियों का समावेश रहता है। मनुष्य जब धर्म से शून्य होता है तब उसमें छल कपट का भाव जाग्रत होता है। दर्शन और धर्म दोनों अलग–अलग हैं। धर्म में क्रियाकाण्ड और मतों को महत्त्व दिया जाता है। क्रियाकाण्डों की उपयोगिता तभी हो सकती है जब उसकी पृष्ठभूमि में आचार और व्यवहार की पवित्रता हो।